International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(6): 96-100

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(6): 96-100
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-09-2019
Accepted: 27-10-2019

Prashant
Research Scholar, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India

Corresponding Author:
Prashant
Research Scholar, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India

वैयाकरण-मतानुसार लक्षणा-विमर्श

Prashant

प्रस्तावना

व्याकरण शब्द वि तथा आङ् उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ् करणे' धातु से ल्यप् प्रत्यय होने पर निष्पन्न होता है। 'व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्'[1] अर्थात् जिससे शब्दों का विश्लेषण किया जाता है, वह व्याकरण कहलाता है। व्याकरण का मुख्य उद्देश्य प्रकृति-प्रत्ययादि के विवेचन के द्वारा शब्द के वास्तविक रूप का निर्धारण करके साधु शब्दों का निराकरण-पूर्वक श्रेष्ठ जन-सम्मत शब्दों के प्रयोग का ज्ञान कराना है। इस शोध-पत्र में व्याकरणशास्त्र में व्याप्त लक्षणा के स्वरूप को प्रस्तुत किया जा रहा है। लक्ष् धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करने से लक्षण शब्द निष्पन्न होता है।

लक्षणा-विमर्श

व्याकरणशास्त्र का व्यवस्थित रूप पाणिनीय व्याकरण से प्राप्त होता है। तदनन्तर कात्यायन, पतञ्जलि तथा भट्टोजिदीक्षित आदि कई वैयाकरण हुए। प्राचीन वैयाकरणों में कात्यायन लक्षणा के विषय में पूर्णत: मौन रहे हैं। पतञ्जलि एवं भर्तृहरि ने 'लक्षणा' इस शब्द का स्वतन्त्र रूप से अपने ग्रन्थों में कहीं प्रयोग नहीं किया परन्तु गौणवृत्ति तथा उपचार आदि के विस्तार में इसका प्रयोग दृष्टिगत होता है। नव्य वैयाकरणों में कौण्डभट्ट लक्षणा को अभिधा से भिन्न मानने के प्रबल विरोधी रहे हैं।[2] वहीं नागेशभट्ट ने व्याकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जुषा में लक्षणा के स्वरूप पर विचार किया है। यद्यपि महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ में 'लक्षणा' शब्द का प्रयोग नहीं किया है परन्तु लक्षणा के स्वरूप पर विस्तृत विचार महाभाष्य में प्राप्त होता है।

पतञ्जलि का लक्षणा-विषयक विमर्श-

पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'पुंयोगादाख्याम्'[3] सूत्र के भाष्य में लक्षणा का नामल्लेख तो

[1] महाभाष्य 1/1/1, पृ० 62

[2] वैयाकरणभूषणसार पृ० 51, 62

[3] महाभाष्य 4/1/48, पृ० 325

नहीं किया है परन्तु यहाँ उसके स्वरूप का विमर्श अवश्य किया गया है। इस प्रत्याख्यान में 'अतस्मिन् स:' तद् से तद्भिन्न के बोध का समाधान करते हैं कि चार प्रकार से भिन्न पदार्थ से भिन्न पदार्थ की प्रतीति होती है। ये चार प्रकार हैं- तात्स्थ्य, ताद्धर्म्य, तत्सामीप्य तथा तत्साहचर्य। "किं पुनरतस्मिन् 'स:' इत्येतद्भवति? चतुर्भि: प्रकारेतस्मिन् 'स:' इत्येतद्भवति- तात्स्थ्यात् ताद्धर्म्यात् तत्सामीप्यात् तत्साहचर्यादिति।"[4]

1. तात्स्थ्य- जहाँ भेद में अभेद-स्थापन का मूल आधाराधेयभाव होता है, उसे तात्स्थ्यसम्बन्ध कहा है। यथा 'मञ्चा: हसन्ति' अर्थात् मञ्च हँसते हैं। यहाँ 'मञ्चा:' से मञ्चस्थ पुरुषों का बोध होता है और मञ्चस्थ व्यक्तियों में मञ्च का तादूप्य आरोपित होता है। आधाराधेयभाव से युक्त दो पदार्थों में परस्पर आधाराधेयता का आरोप कर दिया जाता है। यहाँ मञ्च से सदैव भिन्न रहने वाले बालकों को मञ्च कहा गया है। इस भेद में अभेद का मूल तात्स्थ्य है।[5]
2. ताद्धर्म्य- जहाँ भेद में अभेद-स्थापन का मूल धर्म अर्थात् गुण हो, उसे ताद्धर्म्य कहा जाता है। उदाहरणत: 'जटी ब्रह्मदत:।' उक्त उदाहरण में जटी पर ब्रह्मदत के अभेद के आरोप का कारण जटी में ब्रह्मदत के धर्म की प्रतीति है। यद्यपि जटी और ब्रह्मदत्त दोनों परस्पर भिन्न हैं तथापि उसे ब्रह्मदत्त कह दिया जाता है। 'जटिनं यान्तं ब्रह्मदत इत्युच्यते।'[6] प्रदीप-टीकाकार के अनुसार 'सिंहो माणवक:' तथा 'गौर्वाहीक:' भी ताद्धर्म्य के ही उदाहरण हैं।[7]
3. तत्सामीप्य- जहाँ भेद में अभेद के आरोप का कारण सामीप्य हो, वहाँ तत्सामीप्य प्रकार कहा गया है। उदाहरणत: 'गङ्गायां घोष:।' उक्त उदाहरण में तीर पर गङ्गात्व का आरोप किया गया है। यहाँ सामीप्य के कारण ही गङ्गातीर को गङ्गा कह दिया गया है।[8]
4. तत्साहचर्य- जहाँ भेद में अभेद का कारण साहचर्य हो, उसे तत्साहचर्य कहा गया है। उदाहरण स्वरूप 'कुन्तान् प्रवेशय' तथा 'यष्टी: प्रवेशय' इत्यादि। यहाँ 'कुन्तान् प्रवेशय' इस उदाहरण में कुन्तान् का अर्थ कुन्तधारी पुरुषों से है। कुन्तधारी पुरुषों के साथ साहचर्य होने के कारण उन कुन्तधारी पुरुषों पर कुन्तों का आरोप किया गया है।[9]

यह समग्र विवेचन व्याकरण परम्परा में आगे चलकर लक्षणा-शक्ति का बीज बना। वस्तुत: यही लक्षणा का स्वरूप है। यहीं से लक्षणा का विकास हुआ है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि के इसी विचार के आधार पर आचार्य भर्तृमित्र पाँच प्रकार की लक्षणा का उल्लेख करते हैं-

अभिधेयेन सामीप्यात् सारूप्यात् समवायत:।
वैपरीत्यात् क्रियायोगात् लक्षणा पञ्चधा मता॥[10]

महाभाष्य में उपचार के रूप में भी लक्षणा के संकेत मिलते हैं-

'युवत्वं लोके ईप्सितं पूजेत्युपचर्यते। तत्र भवन्तश्च युवत्वेननोपचर्यमाणा: पूजिता भवन्ति।'[11]

भर्तृहरि का लक्षणा-विषयक विमर्श-

व्याकरण के मूर्धन्य विद्वानों की परम्परा में महाभाष्यकार के पश्चात् वाक्यपदीयकार आचार्य भर्तृहरि आते हैं। इन्होंने लक्षणा के स्वरूप पर चर्चा तो नहीं की परन्तु लक्षणा शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थ में अनेक बार किया है-

लक्षणार्था स्तुतिर्येषां किञ्चिदेव क्रियां प्रति।
तैर्व्यस्तैश्च समस्तैश्च स धर्म उपलक्ष्यते॥[12]

भर्तृहरि ने शब्द के मुख्य और गौण भेदों पर विचार करते हुए एकशब्ददर्शनवाद और अनेकशब्ददर्शनवाद पर ध्यान केन्द्रित किया है।[13]

---

[4] महाभाष्य 4/1/47, पृ० 325

[5] महाभाष्य पृ० 327

[6] महाभाष्य, प्रदीपटीका पृ० 327

[7] महाभाष्य, प्रदीपटीका पृ० 327

[8] महाभाष्य पृ० 327

[9] महाभाष्य पृ० 327

[10] ध्वन्यालोक, लोचनटीका में उद्धृत पृ० 28

[11] महाभाष्य 4/1/163, पृ० 400

[12] वाक्यपदीय 2/380, 2/388, 2/436, 2/445 पृ० 493,497, 534, 545

[13] वाक्यपदीय, पुण्यराज टीका पृ० 361

1. एकशब्ददर्शनवाद- जहाँ अर्थ भेद होने पर भी शब्द एक ही रहता है, वह एकशब्ददर्शनवाद कहलाता है। जैसे 'गौ' शब्द एक ही होता है। परन्तु यह शब्द गाय, इन्द्रिय तथा किरण आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है। वस्तुत: इस वाद के अनुसार एक ही शब्द अनेक अर्थ वाला होता है और निमित्तभेद से वही शब्द भिन्न अर्थों को देता है।

   एकमाहुरनेकार्थं शब्दमन्ये परीक्षका:।
   निमित्तभेदादेकस्य सर्वार्थ्य तस्यभिधते॥[14]

एकशब्ददर्शन में शब्दों के उपचार को प्रसिद्धि और अप्रसिद्धि-निमित्तक तथा अर्थोपचार को स्वरूपार्थत्व और बाह्यार्थत्व भेद से दो प्रकार का माना है। भर्तृहरि ने इसी प्रसंग में शब्द के गौण व मुख्य पक्ष पर भी विचार किया है।[15]

शब्द-एकत्ववादी गौण-मुख्य भाव को प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध भेद पर आश्रित मानते हैं। उदाहरणत: 'गौर्वाहीक:' यहाँ दो शब्द हैं, एक 'गौ:' और दूसरा 'वाहीक:'। गो शब्द का अर्थ वाहीक भी है। अन्तर इतना है कि गौ शब्द वाहीक शब्द से अधिक प्रसिद्ध है। जबकि वाहीक शब्द कम प्रसिद्ध है। इसी को भर्तृहरि ने शब्दोपचार पक्ष का प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध-निमित्तक भेद माना है।

भर्तृहरि ने अनित्यता दोष से बचने के लिए शब्दोपचार के साथ-साथ अर्थोपचार भी स्वीकार किया है। उन्होंने शब्द के अर्थ दो प्रकार के माने हैं- स्वरूपार्थ एवं बाह्यार्थ। यथा 'गौर्वाहीक:'। गो शब्द का मुख्य अर्थ गोत्व है और वाहीक में गोत्व उपचरित है। जाड्यादि गुणों के आधार पर वाहीक अर्थ से मिल जाता है।[16] शब्द का स्वयं का स्वरूप ही वाच्य होता है। यह शब्द-स्वरूप सभी अर्थों से अनुषक्त होता है, कभी वह गोत्व से जुडता है और कभी वाहीकत्व से। मुख्यता तथा गौणता प्रसिद्धि पर निर्भर करती है।

2. अनेकशब्ददर्शनवाद- जहाँ अर्थ-भेद होने पर शब्द भेद होता है, उसे अनेकशब्ददर्शनवाद कहा गया है। अर्थात् एक ही शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ में भिन्न-भिन्न शब्द के रूप में गृहीत होना चाहिए।[17] उदाहरणत: गाय अर्थ का बोध कराने वाला 'गो' शब्द और इन्द्रिय अर्थ का बोध कराने वाला 'गो' शब्द वस्तुत: एक-दूसरे से भिन्न हैं। इनमें एकता का भान सादृश्यनिबन्धना प्रत्यभिज्ञा के बल पर होता है।

भट्टोजिदीक्षित का लक्षणा-विषयक विमर्श-

आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी पर स्वयं लिखी प्रौढमनोरमा नामक टीका में दो प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख किया है- शक्तिवृत्ति और लक्षणावृत्ति। 'गौणी तु लक्षणान्तर्भूता पृथग्वाऽस्तु।'[18] प्रौढमनोरमा पर हरिदीक्षित ने बृहच्छब्दरत्न और लघुशब्दरत्न टीकाएँ लिखी हैं। लघुशब्दरत्न में हरिदीक्षित ने लक्षणाविषयक पङ्क्ति की व्याख्या की है।[19]

नागेशभट्ट का लक्षणा-विषयक विमर्श-

व्याकरण-परम्परा में नव्य विचारधारा वाले नागेशभट्ट ने अपने ग्रन्थों वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा और वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा में लक्षणा-शक्ति के विषय में विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है। नागेश वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा तथा वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा में लक्षणा का प्रतिपादन करते हैं कि वृत्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं- "सा च वृत्तिस्त्रिधा शक्तिर्लक्षणा व्यञ्जनाश्च।"[20]

वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा में नागेश ने लक्षणा के विषय में मत दिया है कि 'उस प्रकार के सम्बन्धज्ञान से जन्य मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ की उपस्थिति ही लक्षणा है और यह शब्द के वाच्यार्थ से सम्बन्धित लक्ष्यार्थ की वाचक होने के कारण पदनिष्ठा है।'[21] इसके अतिरिक्त सिद्धान्तमञ्जूषा में लक्षणा-निरूपण के आरम्भ में नागेशभट्ट कहते हैं, 'जिस पदार्थ का बोध स्वविषयकबोधजनकता के कारण होता है उस पदार्थ की बोधक जो वृत्ति है, वह शक्ति

---

[14] वाक्यपदीय 2/250, पृ० 316

[15] संस्कृत चिन्तन परम्परा में लक्षणा विमर्श पृ० 172

[16] वाक्यपदीय, पुण्यराज टीका पृ० 367

[17] वाक्यपदीय 2/251 पृ० 368

[18] प्रौढमनोरमा पृ० 240-41

[19] लघुशब्दरत्न व्याख्या पृ० 240-42

[20] वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा पृ० 94

[21] तादृशसम्बन्धज्ञानजन्या तदुपस्थितिरेव लक्षणा।
स्वविषयसम्बन्धिवाचकत्वेन चैषा पदनिष्ठा॥
वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा पृ० 97

है और जिस पदार्थ का बोध स्वसम्बन्धिबोधजनकता के ज्ञान से होता है, उस पदार्थ का बोध कराने वाली वृत्ति लक्षणा है।'[22]

लक्षणा के स्वरूप का वर्णन करते हुए नागेशभट्ट ने लक्षणा के बीज, इसके निमित्त एवं इसके भेदों-प्रभेदों के विषय में भी विचार किया है। नागेश भट्ट ने तात्पर्यानुपपत्ति को ही लक्षणा का बीज माना है।[23] लक्षणा का निमित्त रूढि अथवा प्रयोजन होता है।[24] यथा 'गङ्गायां घोषः' में गङ्गा पद से तीर अर्थ के बोध में अतिशय शैत्य एवं पावनत्व की प्रतीति कराना वक्ता का प्रयोजन है। नागेश भट्ट ने लक्षणा का सर्वप्रथम द्विधा विभाजन शुद्धा एवं गौणी रूप में बताया है। अनन्तर जहत्स्वार्था एवं अजहत्स्वार्था का भी वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकारों निरूढा तथा प्रयोजनवती लक्षणा की कल्पना भी उपस्थित की गई है।[25]

नागेश भट्ट द्वारा प्रतिपादित लक्षणा के भेद इस प्रकार हैं –

गौणी लक्षणा	सादृश्य सम्बन्ध द्वारा
शुद्धा लक्षणा	सादृश्येतर सम्बन्ध द्वारा
अजहत्स्वार्था लक्षणा	छत्रिणो यान्ति, कुन्तान् प्रवेशय, काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्
जहत्स्वार्था लक्षणा	गां/वाहीकं पश्य
निरूढा लक्षणा	त्वचा ज्ञातम्
प्रयोजनवती लक्षणा	कुन्ताः प्रविशन्ति, गङ्गायां घोषः

उपर्युक्त साङ्गोपाङ्ग विवेचन से नागेशभट्ट की लक्षणा-विषयक स्वीकृति सिद्ध होती है।

नागेशभट्ट द्वारा लक्षणा का खण्डन

वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा में लक्षणा के प्रसङ्ग में नैयायिकों और मीमांसकों के लक्षणा-विषयक सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। लक्षणा-वृत्ति स्वीकार करने में नागेश ने गौरव-दोष बताया है। अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा मानने पर दो प्रकार के कार्यकारण भाव की कल्पना करनी होगी। अभिधा से होने वाले शाब्दबोध के प्रति शक्तिज्ञानजन्य अर्थोपस्थिति कारण है तथा लक्षणा से होने वाले शाब्दबोध के प्रति लक्षणाज्ञानजन्य अर्थोपस्थिति को कारण मानना होगा। अतः अतिरिक्त वृत्ति की कल्पना अनुचित है।[26]

लक्षणा न मानने पर व्यवहार में लक्षणायुक्त अर्थों के बोध की व्याख्या किस प्रकार होगी? इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए आचार्य नागेश कहते हैं कि शक्ति दो प्रकार की है- प्रसिद्धा तथा अप्रसिद्धा। अल्प बुद्धि वाले सामान्य जन प्रसिद्धा शक्ति से अर्थग्रहण करते हैं। अप्रसिद्धा शक्ति सहृदय ही समझ पाते हैं।[27] यथा 'गङ्गायां घोषः' यहाँ गङ्गा पद की प्रवाह अर्थ में प्रसिद्धा शक्ति है तथा तट अर्थ में अप्रसिद्धा शक्ति है। पूर्वपक्षियों के पुनः प्रश्न कि सभी शब्द यदि सभी अर्थों के वाचक हो गए तो किसी भी शब्द से किसी भी अर्थ का बोध होने लगेगा, यथा घट शब्द से पट का ज्ञान। इसका उत्तर नागेश ने दिया है कि वक्ता का तात्पर्य होने पर ही शब्द अर्थ का वाचक है। (तन्न सति तात्पर्ये सर्वे सर्वार्थवाचकाः)। घट शब्द के उच्चारण में वक्ता का तात्पर्य पट अर्थ के बोध में न होने से वहाँ पट अर्थ का बोध नहीं हो सकता। इस प्रकार लक्षणा स्वीकार न करने पर भी कोई अव्यवस्था नहीं होती है।[28]

निष्कर्ष- व्याकरण-परम्परा में मुख्य रूप से अभिधा-वृत्ति की ही स्वीकृति है। यहाँ लक्षणा की स्वतन्त्र चर्चा न होते हुए भी इसके स्वरूप का विचार आचार्यों ने यथामति किया है। महाभाष्य में लक्षणा के स्वरूप का उत्स प्राप्त होता है। आचार्य भर्तृहरि ने भी गौणवृत्ति को स्वीकार किया है, यह लक्षणा ही है। नव्य वैयाकरणों में किसी ने भी मुक्तकण्ठ से लक्षणा वृत्ति को स्वीकार नहीं किया है तथापि नागेश भट्ट द्वारा लक्षणा-विवेचन विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

---

[22] यस्य पदार्थस्य स्वविषयकबोधजनकत्वज्ञानाद् बोधस्तदर्थनिरूपितबोधकत्वं शक्तिः यस्य पदार्थस्य स्वसम्बन्धिबोधजनकत्वज्ञानाद् बोधः, तत्पदार्थनिरूपिततादृशबोधकत्वं लक्षणेति व्यवस्थाङ्गीकारात्। वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, पृ. 65

[23] वस्तुतः तात्पर्यानुपपत्तिरेव तद्बीजम्। वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, पृ. 95

[24] रूढिप्रयोजनान्यतरदपि तत् कारणमनुभवबलात्। वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, पृ. 101

[25] वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, पृ. 100-101

[26] वृत्तिद्वयावच्छेदकद्वयकल्पने गौरवात्, जघन्यवृत्तिकल्पनाया अभ्याय्यत्वाच्च। वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, पृ. 75

[27] शक्तिर्द्विविधा प्रसिद्धा अप्रसिद्धा च। आमन्दबुद्धिवेद्यात्वं प्रसिद्धात्वम्। सहृदयहृदयमात्रवेद्यात्वमप्रसिद्धात्वम्। वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, पृ. 77

[28] ननु सर्वे सर्वार्थवाचकाः इति चेद् ब्रूषे तर्हि घट पदात् पट-प्रत्यय किन्न स्याद् इति चेन्न। 'सति तात्पर्ये' इति उक्तत्वात्। वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, पृ. 77

लक्षणा के खण्डन से कोई अव्यवस्था न हो, इसके लिए शक्ति दो प्रकार की मानने के एवं अप्रसिद्धा शक्ति का प्रयोग भी वस्तुत: आचार्य को सैद्धान्तिक स्वरूप में लक्षणा स्वीकार करने के समीप ले जाता है, तथापि व्याकरण-परम्परा स्वतन्त्रतया लक्षणा स्वीकार नहीं करती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी, पाणिनि, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1980.
2. ध्वन्यलोक-लोचन, अभिनवगुप्त, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965.
3. ध्वन्यालोक, व्याख्याकार- डॉ. रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1973.
4. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965.
5. महाभाष्य, पतञ्जलि, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, वि० सं० 2019.
6. महाभाष्य, पतञ्जलि, हरियाण साहित्य संस्थान, गुरूकुल झज्झर, रोहतक, 1963.
7. वाक्यपदीय, भर्तृहरि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971.
8. वैयाकरणभूषणसार, कौण्डभट्ट, सम्पादक-बालकृष्ण पञ्चोली, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1969.
9. वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, नागेशभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, 1974.
10. वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, नागेशभट्ट, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी, 1977.
11. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, नागेशभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1971.
12. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, नागेशभट्ट, व्याख्याकार पं० सभापति शर्मोपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1963.
13. संस्कृत चिन्तन परम्परा में लक्षणा विमर्श, डॉ.अनिल कुमार सिन्हा, आस्था प्रकाशन, दिल्ली, 2018.